'भीनमाल' जैन इतिहास के पृष्ठों पर

—श्री घेवरचंदजी माणेकचंदजी

राजस्थान के दक्षिण भाग में स्थित जालोर जिले का उपजिला मुख्यालय भीनमाल अपनी स्वर्णिम पृष्ठभूमि रखता है। यह नगर चारों युगों में भिन्न-भिन्न नाम से सम्बोधित किया गया है। सतयुग का श्रीमाल, त्रेता का रत्नमाल, द्वापर का पुष्पमाल एवं वर्तमान में कलियुग का भिन्नमाल (भीनमाल) अपने अन्तस्थल में भारत का गहरा इतिहास संग्रहीत किये हुए है। जैन एवं जैनेतर सभी विद्वान् साहित्यकार, महान तपस्वी साधु एवं धनाढ्य वणिकवर्ग इस नगर में हो चुके हैं। इनकी यशोगाथाओं से सम्पूर्ण भारत का इतिहास ज्योतिर्मय हो उसी स्वर्णिम इतिहास की एक संक्षिप्त झाँकी इन पृष्ठों पर देने का प्रयास किया गया है।

वि. सं. २०२ में भीनमाल नगर पर सोलंकी राजपूतवंश का राजा अजीतसिंह राज्य करता था। उस समय मुगल बादशाह मीर ममौचा ने धन लूटने के लोभ से भीनमाल पर आक्रमण किया। भयंकर लड़ाई में लाखों प्राणों की आहुति हुई। राजा अजीतसिंह भी उस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। म्लेच्छों ने भीनमाल को बुरी तरह लूटा। देवस्थानों पर संग्रहित स्वर्ण आभूषण एवं स्वर्ण की मूर्तियाँ लूट लीं। यहाँ के घर उजाड़ दिये एवं अथाह धन एकत्र कर अपने वतन ले गया। परन्तु यहाँ की संस्कृति समाप्त नहीं हुई। यह नगर पुनः आबाद हुआ। यह क्रम करीब ३०० वर्ष तक चलता रहा। उन दिनों में भीनमाल में लगभग ३१००० ब्राह्मण परिवार रहते थे। वि. सं. ५०३ में भीनमाल का राजा सिंह हुआ है। राजा सिंह के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उसने सन्तान-प्राप्ति के हेतु अपनी गोत्रजा खीमजादेवी की आराधना की एवं सात दिन तक बिना अन्न जल उपवास किया। जिस पर देवी ने प्रकट होकर राजा को कहा कि तुम्हारे भाग्य में सन्तानप्राप्ति का योग नहीं है फिर भी तू जयणा देवी (खीमजा देवी की बहन) की आराधना कर वह तुझे दत्तकपुत्र ला देगी। पौराणिक कथानुसार राजा सिंह ने जयणा देवी की आराधना की। जिस पर देवी ने राजा सिंह को अवन्ती नगरीके राजा मोहल का तुरन्त जन्मा हुआ पुत्र लाकर दत्तक सौंपा एवं उसको अपने ही पुत्र समान पालन पोषण करने की आज्ञा दी। उस पुत्रकी प्राप्ति जयणा देवी के द्वारा होने के कारण उसका नाम जयणकुमार रखा गया। वि. सं. ५२७ में जयणकुमार भीनमाल के सिंहासन का अधिपति हुआ। इस कालमें भिन्नमाल नगरकी पुनः महान उन्नति हुई। वि. सं. ६८५ में यहां पर श्री ब्रह्मगुप्त नामक महान् ज्योतिषविज्ञ हुए हैं। इनको भिन्नमालाचार्य भी कहते थे। श्री ब्रह्मगुप्त द्वारा लिखित ब्राह्मण स्फुट (ब्रह्मसिद्धान्त) में उस कालका भीनमालका राजा चापवंशीय व्याघ्रमुख (वामलात) बताया है।

श्रीचापवंशतिलके श्रीव्याघ्रमुखे नृपे शकनृपाणाम्।
पंचाशत्संयुक्तैं वर्षशतैः पंचभिरतीतैः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मस्फुटसिद्धांतः सज्जनगणितगोलवित्प्रत्यै ।
त्रिंशद् वर्षेण कृतो जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्तेन ॥ (ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, अध्याय २४)

चीनी यात्री हुएनसांग वि. सं. ६९७ के लगभग में इस प्रदेश में आया होना जान पड़ता है। हुएनसांग ने अपनी यात्रा विवरण की पुस्तक सि-यु-कि में मालवे के बाद क्रमशः औचिल, कच्छ, वलभी, आनंदपुर, सौराष्ट्र (सोरठ) और गुर्जर (गुजरात) देशों का वर्णन किया है। गुर्जरदेश के बारे में वह लिखता है कि वल्लभीदेश से करीब ३०० मील उत्तर में जाने पर गुर्जर राज्य में पहुंचते हैं। यह राज्य अनुमानतः ८३३ मील के घेरे में है। इस देश की राजधानी भीनमाल है जो करीब ५ मील के घेरे में आबाद है। जमीन की पैदावार एवं लोगों की रीत-भात सोरठदेश के लोगों के जैसी है। आबादी घनी है एवं यहां के लोग धनाढ्य और संपन्न हैं। वे बहुधा नास्तिक हैं। यहाँ पर अनेकों दहाई—देवमन्दिर हैं। राजा क्षत्रियजातिका है। यहां पर यह बात विशेष महत्त्वकी है कि हुएनसांगने भीनमालके लोगोंको नास्तिक बताया है। इसका कारण केवल यही होना चाहिए कि भीनमालमें बौद्ध-धर्मके माननेवाले कोई नहीं थे। अन्यथा वहां पर उस कालमें अनेकों देवमन्दिर होना भी हुएनसांगने बताया है। अर्थात् लोग वैदिकमतके या जैनमतके अनुयायी होंगे। हुएनसांगने अपने यात्रावर्णनमें लिखा है कि भीनमालका राजा २० वर्षका युवान है एवं वह बुद्धिमान और पराक्रमी है; वह बुद्धिमानोंका बड़ा आदर करता है।

राजा व्याघ्रमुख (वर्मलात) का प्रधानमन्त्री सुप्रभदेव ब्राह्मण था। सुप्रभदेव कवि माघका पितामह था। प्राचीनकालमें भारतके विद्वान निरभिमानी एवं निःस्वार्थी होते थे। इस लिए बहुधा उनके ग्रन्थोंमें उनके नाम, स्थान व काल वे नहीं लिखते थे। अपने जीवनका परिचय अपनी ही कृतिमें देना वे आडम्बर समझते थे। इसलिए प्राचीन इतिहासकी कड़ी ग्रन्थों के आधार पर ढूंढना बड़ा कठिन कार्य है। कवि माघ संस्कृत भाषाके श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि चली आती है कि कालिदासके ग्रन्थोंमें उपमा, भारविके किरातार्जुनीय में अर्थ गौरव, और दंडीके ग्रन्थोंमें पदलालित्यकी विशेषता है किन्तु माघके शिशुपालवधमें इन तीनों गुणोंका समावेश है। माघ किस कालमें हुए थे यह उनके ग्रन्थ शिशुपालवधसे ज्ञात नहीं होता। किंतु कविने उक्त ग्रन्थके अन्तमें अपने देशवंश-का परिचय दिया है।

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा ॥१॥
काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥२॥
तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचोगुणग्राहि जनैः प्रतीये ॥३॥
सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनितं जनेन
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ॥४॥
श्रीशब्दरम्यकृत-सर्ग-समाप्तिलक्ष्म लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयादः काव्यं व्यधात्त शिशुपालवधाभिधानम् ॥५॥
(शिशुपालवधकाव्यके अंतका कविवंशवर्णन)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माघके शिशुपालवध काव्यमें राजनीतिका वर्णन करते हुए राजनीतिकी समता शब्दविद्या (व्याकरण-शास्त्र) के साथ की है जिसका आशय यह है :—पद-पद पर नियमपालन करनेवाली अर्थात् सब व्यवहारवाली (अनुत्सूत्रयदन्यासा) सेवकोंकी यथायोग्य जीविका देने वाली (सद्वृत्ति) और स्थायी जीविका देनेवाली (सन्निबंधना) होने पर भी यदि राजनीति गुप्तदूतरहित (अपस्पशा) हो तो शोभा नहीं देती है।

अनुसूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपश्पशा॥ (शिशुपालवधकाव्य, सर्ग २)

शिशुपालवधकाव्य की श्रेष्ठता का एक अनुपम उद्धरण निम्नलिखित है। जनश्रुति अनुसार माघ के सरस्वतीका पुजारी होते हुए भी उस पर लक्ष्मी की असीम कृपा थी। एक बार राजा भोज माघका वैभव आदि देखने को श्रीमालनगर को आया। माघ पंडितने उसकी अगुवाई की और वह अपने घर राजा को ले गया। राजा कुछ दिन माघ के घर ठहरा। उसका अतुल वैभव और अपरिमित दानशीलता देखकर भोज चकित रह गया। कुबेर समान संपत्तिवाला माघ विद्वानों को और याचकों को उनकी इच्छानुसार द्रव्यदान दे देकर वृद्धावस्थामें दरिद्र हो गया। दरिद्रता से दुःखी होकर उसने अपने देश से पलायन कर दिया एवं धारानगरी में जाकर निवास किया। वहाँसे उसने अपनी पत्नी के साथ स्वरचित काव्य शिशुपालवध द्रव्यप्राप्ति की आशासे राजा भोजके पास भेजा। भोजने उस स्त्री से वह काव्य लेकर उस पुस्तक को खोला तो प्रातःकाल के वर्णनका कुमुदवनमपश्रि से प्रारंभ होने वाला एक श्लोक दृष्टिगोचर हुआ। वह श्लोक निम्न प्रकार से था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ह्रीविचित्रो विपाकः॥

आशय—सूर्य के उदय और चंद्रके अस्त होने पर कुमदकी (रात्रि में खिलनेवाले कमलों की) शोभा नष्ट हो जाती है और अम्भोज (दिनमें खिलने वाले कमल) सुशोभित होते हैं, उल्लू निरानंद और चक्रवाक सानंद होते हैं।

उक्त श्लोकका भाव देखते ही विद्वान राजा भोज मुग्ध हो गया। उसने कहा—काव्य का तो कहना ही क्या? यदि इस श्लोक के लिए ही सारी पृथ्वी दे दी जाय तो कम होगी। फिर राजा ने माघ की पत्नी को एक लाख रुपया भेंट देकर विदा किया। अपने घर लौटने पर याचकों ने उसे माघ की पत्नी जान याचना की जिस पर उसने वह सारा द्रव्य उन लोगों को दे दिया। पत्नी ने खाली हाथ पतिके पास जाकर पूर्ण विवरण अपने स्वामी को कह सुनाया। माघ कविने पत्नी से केवल इतना ही कहा कि तुम मेरी मूर्तिमती कीर्ति ही हो। याचक पुनः माघके घर याचना करने गये किंतु माघके पास उस समय कुछ भी देने को नहीं था। उस परिस्थिति से दुःखित होकर उसका प्राणान्त हो गया। जैन मुनि उद्योतनसूरिकी कुवलयमाला कथा वि. सं. ७७८ में भीनमाल में पूरी हुई थी। श्री हरिभद्रसूरिकी साहित्य-प्रवृत्ति का क्षेत्र भी भीनमाल ही था। मुनि सिद्धर्षिने उपमितिभव-प्रपंचा कथा वि. सं. ६६२ में भीनमाल में पूरी की। उस काल में साहित्य क्षेत्र में भीनमाल ने उन्नतिकी चरम सीमा प्राप्त की थी। (विशेष के लिए देखें इस लेखका परिशिष्ट।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि. सं. ७०५ में जयणकुमारका वंशज राजा सामंत राजगद्दी पर विराजमान हुआ। इसके पूर्व वि. सं. ६८५ में भीनमालका राजा व्याघ्रमुख (वर्मलात) बताया गया है। इसलिए सामंतका वर्मलात से कोई न कोई संबंध, पितापुत्र का अथवा भ्राता का होना चाहिए। इस सबंध में इतिहास प्राप्त नहीं है। सामंत के दो पुत्र थे जिनके नाम क्रमशः जयंत व विजयंत थे। राजा सामंतने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयंत को भीनमाल का राज्य सौंपा एवं उसके लघुभ्राता विजयंत को पड़ोसी राज्य लोहियाण नगरका राज्य सौंपा। लोहियाण नगर आजका जसवंतपुरा ही है। पिता की मृत्यु के बाद जयंतने लड़ाई कर अपने लघुभ्राता विजयंतका राज्य हड़प लिया। विजयंत वहां से भागकर बनासनदी के तट पर राजा रत्नादित्य के यहाँ अपने मामा वजीसिंह के पास चला गया। वजीसिंहने विजयंत को वर्षाकाल तक वहीं रहने की सलाह दी। विजयंत वर्षाकाल तक अपने मामा के राज्य में शंखेश्वर ग्राम में रहने लगा। उस समय शंखेश्वर ग्राम में जैनमुनिश्री सर्वदेवसूरि चातुर्मास बिराजमान थे। एक समय वे आचार्यजी महाराज प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो अपने उपाश्रयमें पधार रहे थे। राजा विजयंत उस समय आखेट हेतु वन में प्रस्थान कर रहा था। जैनमुनिको सामने आते देख, अपशुकन जानकर उसने गुरु महाराज को मारने के हेतु से हाथ ऊंचा उठाया। किंतु आचार्यजी के अतिशय के प्रभाव से उस राजा के हाथ स्तंभित रह गये, एवं राजा को बहुत पीड़ा होने लगी। इस पर राजा बहुत शर्मिंदा हुआ और उसने आचार्यजी महाराज से क्षमायाचना की। मुनिराज ने राजा को क्षमा कर दिया, राजा मुनिराज के पैरों पर गिर पड़ा। इस पर राजा के शरीर की व्याधि कम हुई। वि. सं. ७२३ में मार्गशीर्ष मास की दशमीके दिन राजा विजयंतने जैनधर्म स्वीकार किया, श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये एवं जीवहिंसा तथा अभक्ष्यभोजनादि त्याग दिया। वर्षाकाल समाप्त होने के बाद विजयंत अपने मामा वजीसिंह के साथ भीनमाल नगर आया। वजीसिंह ने अपने भाणेज जयंत को समझाबुझा कर विजयंतका लोहियाणनगर का राज्य उसे वापिस दिलाया। राज्य प्राप्ति के बाद विजयंत राज्यमद से प्रामादी हो गया। उसने सम्यक्त्वको त्याग दिया और मिथ्यात्व ग्रहण कर लिया। आचार्यश्री को इस बातका ज्ञान होते ही उन्होने अपनी आकर्षण विद्या से राजा को शंखेश्वर बुलाया एवं प्रतिबोध देकर पुनः सम्यक्त्व ग्रहण कराया। राजा बहुत ही क्षोभयुक्त हो गया एवं आचार्य जी महाराज से उसने क्षमा मांगी। उसने आचार्य जी से विनति कर लोहियाण नगर पधारने का आग्रह किया। महाराज ने भी राजा की विनति स्वीकार की तथा चातुर्मास भी लोहियाण नगर में ही किया। आचार्य जी महाराज के उपदेश से राजाने लोहियाण नगर में श्रीऋषभदेवप्रभु का जिनमंदिर बनवाया। श्री सर्वदेवसूरिने इस मंदिर की प्रतिष्ठा कराई। राजा विजयंतने नगर में पौषधशाला भी करवाई। वि. सं. ७४५ में आचार्य सर्वदेवसूरि स्वर्ग सिधारे। राजा विजयंत के आठ पत्नियां थीं जिनके नाम क्रमशः देभाई, सोमाई, कस्तूराई, श्रीबाई, कपराई, राजबाई, लक्ष्मी एवं पूनाई थे। वि. सं. ७४९ में श्रीबाई का पुत्र जयवंत राजसिंहासन पर बैठा। जयवंत के तीन रानियां थीं जिनके नाम संपू, रमाई व जीवाई थे। संपूका पुत्र मल्ल नागेंद्रगच्छ के आचार्य से प्रतिबोधित हुआ। उसने दीक्षा अंगीकार की और वे सोमप्रभाचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए। राजा जयवंत की दूसरी रानी के वना नाम का पुत्र था जो जल में डूब कर मर गया था। इसलिये उक्त वनाका पुत्र अथवा जयवंतका पौत्र भाणजी लोहियाण नगर की राजगद्दी पर आसीन हुआ। भाणजी बड़ा वीर एवं पराक्रमी राजा था। उसी के वंशके भीनमाल के राजा जयंत के संतानविहीन होने से उसकी मृत्यु के बाद भीनमालका का राज्य भाणजीने अपने अधीन कर लिया। भाण राजाने अपने राज्य का विस्तार उत्तर पूर्वमें गंगा के किनारे तक विस्तृत कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया था । दक्षिण में गुजरात के प्रदेश भड़ोच तक यह राज्य फैला हुआ था । भाणराजा के संसार पक्षके काका श्रीमल्ल जो साधु हो गये थे और जिनका नाम सोमप्रभ आचार्य था, विहार करते-करते वि. सं. ७७५ की साल में भीनभाल पधारे थे । उन्होंने भीनमाल के राज्य-परिवार को उपदेश देकर उनके पारिवारिक क्लेश को दूर किया । श्री भाणराजा की विनति पर आचार्य जी ने भीनमाल में चातुर्मास किया । भाणराजा ने शत्रुंजय एवं गिरनारकी संघसहित यात्रा की । उन्होंने अपने कुलगुरु शंखेश्वरगच्छ के आचार्य उदयप्रभसूरिको निमंत्रण देकर संघके साथ यात्रा करने को बुलाये । भाणराजा की यह संघयात्रा बड़ी विशाल थी । पौराणिक कथानुसार भाणराजा की उक्त संघयात्रा में, सात हजार रथ, सवालाख घोड़े, दस हजार हाथी, सात हजार पालकी, पचीस हजार ऊंट एवं ग्यारह हजार बैलगाड़ियाँ थीं । भाणराजा के संघवी पदके तिलक करने के बारे में एक विवाद उत्पन्न हुआ । जिस पर भिन्न-भिन्न गच्छ के आचार्यों को एकत्रित कर इस विषय पर विचार किया । विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया कि संघवीपदका तिलक कुलगुरुको ही करने का अधिकार है । इसके बाद श्री उदयप्रभसूरिजी ने भाणराजा को संघवी पदका तिलक किया । भाण राजा ने उक्त संघमें अठारह करोड़ सोनामोहरोंका खर्च किया । भविष्यमें भी ऐसे विषयों पर कोई विवाद उत्पन्न न हो इसलिये सभी गच्छों के आचार्यों ने मिलकर यह मर्यादा बांधी कि जो आचार्य जिस श्रावक को प्रतिबोध देकर जैन बनावे वह साधु उस श्रावक का कुलगुरु माना जायगा । कुलगुरु अपनी बही में अपने श्रावकका नाम दर्ज करेगा एवं भविष्य में उस श्रावकके द्वारा कोई प्रतिष्ठा आदि कार्य उसके कुलगुरु के द्वारा ही संपन्न कराया जायगा । यदि वे कुलगुरु कहीं दूर विराजमान हों तो उन्हें निमंत्रण देकर बुलाना आवश्यक है । यदि किसी कारणवश कुलगुरु न आ सकें तो उनकी आज्ञा लेकर अन्य आचार्य से ये कार्य संपन्न कराये जा सकते हैं । उसके बाद जो आचार्य जिन्होंने उपरोक्त कार्य संपन्न कराया हो वे उस श्रावक के कुलगुरु माने जायेंगे । इस व्यवहारको लिपिबद्ध किया गया एवं उस पर विभिन्न गच्छ के आचार्यों ने एवं श्रावकों ने हस्ताक्षर किये । जो निम्नप्रकार हैं:—

गच्छ का नाम	आचार्य का नाम
नागेंद्रगच्छ	श्री सोमप्रभाचार्य
ब्राह्मणगच्छ	श्री जिज्जगसूरि
उपकेशगच्छ	श्री सिद्धसूरि
निवृत्तिगच्छ	श्री महेंद्रसूरि
विद्याधरगच्छ	श्री हरियानंदसूरि
सांकेरगच्छ	श्री ईश्वरसूरि
शंखेश्वरगच्छ	श्री उदयप्रभसूरि

इसके अतिरिक्त श्री आहरसूरि, आर्द्रसूरि, जिनराजसूरि, सोमराजसूरि, राजहंससूरि, गुणराजसूरि, पूर्णभद्रसूरि, हंसतिलकसूरि, प्रभारत्नसूरि, रंगराजसूरि, देवरंगसूरि, देवानंदसूरि, महेश्वरसूरि, ब्रह्मसूरि, विनोदसूरि, कर्मराजसूरि, तिलकसूरि, जयसिंहसूरि, विजयसिंहसूरि, नरसिंगसूरि, भीमराजसूरि, जयतिलकसूरि, चंदहंससूरि, वीरसिंहसूरि, रामप्रभसूरि, श्री कर्णसूरि, श्री विजयचंदसूरि एवं अमृतसूरि ने भी हस्ताक्षर किये । उक्त लिखित पर श्री भाणराजा, श्रीमाली जोगा, राजपूर्ण एवं श्री कर्ण आदि श्रावकों ने भी हस्ताक्षर किये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाण राजा के ३२५ रानियाँ थीं। परंतु किसी के भी सन्तान नहीं थी। इसलिये सन्तान की चाहना राजा ने अपने कुलगुरु के समक्ष व्यक्त की। श्री उदयप्रभसूरि आचार्य जी ने भाणराजा को बतलाया कि यदि वह उपकेश नामके नगरके निवासी श्री जयमल सेठ की पुत्री रत्नाबाई से विवाह कर सके तो उसे दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति हो सकती है। भाणराजा ने कुलगुरु की बात सुन कर श्री जयमल सेठ से उसकी पुत्री रत्नाबाई का विवाह स्वयं के साथ करने का प्रस्ताव रखा। जयमल सेठ ने राजा का उक्त प्रस्ताव नहीं माना। फिर एक वारांगना की सहायता से भाणराजा उस रत्नाबाई के साथ इस शर्त पर विवाह करने में समर्थ हुए कि रत्नाबाई से उत्पन्न पुत्र भीनमाल का राज्याधिपति होगा। विवाह के पांच वर्ष बाद रत्नाबाई ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम राणा रखा गया। उसके कुछ काल बाद रत्नाबाई ने एक अन्य पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम कुम्भा रखा गया। इन पुत्ररत्नों की प्राप्ति से भाणराजा को जैन धर्म में प्रगाढ श्रद्धा हो गई। उसने कुलगुरु के पास श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये एवं नगर में यह उद्घोषणा कराई कि जो कोई व्यक्ति जैन धर्म स्वीकार करेगा वह राजा का साधर्मिक भाई बनेगा, राजा उसकी सभी मनोवांछना पूरी करेगा। यह घोषणा वि. सं. ७९५ की मिगसर शुक्ल दशमी को रविवार के दिन की गई थी। उक्त घोषणा के बाद भीनमाल में रहने वाले श्रीमाली ब्राह्मण जाति के ६२ करोड़पति सेठों ने जैन धर्म स्वीकार किया। श्री उदयप्रभसूरिजी आचार्य ने उन ब्राह्मण सेठों को प्रतिबोध देकर उनके मस्तक पर वासक्षेप डाला। उन ब्राह्मण सेठों के गोत्र व नाम निम्नलिखित थे :—

क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम	क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम
१.	गौतम	विजय	१७.	सांख्य	मना
२.	हरियाण	शंख	१८.	महालक्ष्मी	ममन
३.	कात्यायन	श्रीमल्ल	१९.	वीजल	वर्धमान
४.	भारद्वाज	नोड़ा	२०.	लाकिल	गोवर्धन
५.	आग्नेय	वधा	२१.	दीपायन	गोध
६.	काश्यप	जना	२२.	पारध	मीस
७.	वारिधि	राजा	२३.	चक्रायुध	सारंग
८.	पारायण	सोमल	२४.	जांगल	रायमल्ल
९.	वसीयण	ममच	२५.	वाकिल	धन्ना
१०.	खोडायन	जोग	२६.	माढर	जीवा
११.	लोडायण	सालिग	२७.	तुंगियाण	विजय
१२.	पारस	तोला	२८.	पायन	वामउ
१३.	चेडीसर	नारायण	२९.	एलायन	कडुआ
१४.	दोहिल	जवाँ	३०.	चोखायण	जांजण
१५	पापच	ससधर	३१.	असायण	पोषा
१६.	दाहिम	शंका	३२.	प्राचीन	राजपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम	क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम
३३.	कामरू	सहदेव	४८.	जालंधर	दोउ
३४.	मोमान	कर्मण	४९.	तक्षक	मुंज
३५.	चन्द्र	मांका	५०.	खाजिल	सांतु
३६.	वटर	आदित्य	५१.	वायन	लाखु
३७.	बोहिल	हरखा	५२.	सारधर	दुघड
३८.	राजल	विष्णु	५३.	धीरध	वघा
३९.	स्वस्तिक	देपा	५४.	आत्रेय	श्रीपाल
४०.	अमृत	चंड	५५.	आहट	मोका
४१.	चामिला	नाना	५६.	कर्कष	गोना
४२.	कौशिक	हरदेव	५७.	बेबायन	सहसा
४३.	बटुल	ममच	५८.	कुंमड	भीम
४४.	नागड	मोला	५९.	दीर्घायण	हापा
४५.	जायण	सीपा	६०.	तोतिल	रंग
४६.	डोउ	नथु	६१.	बदुसर	धरण
४७.	जलिधर	हाथी	६२.	वावक	गोविंद

तदुपरांत आचार्य उदयप्रभसूरिजीने प्राग्वर ब्राह्मण जातिके आठ शेठोंको प्रतिबोध देकर वि. सं. ७९५ की फाल्गुन शुक्ला दूजको जैन बनाये जिनके नाम व गोत्र निम्नप्रकार हैं :—

क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम	क्रम संख्या	गोत्र का नाम	शेठ का नाम
१.	काश्यप	नरसिंह	५.	पारायण	नाना
२.	पुष्पायन	माधव	६.	कारिस	नागड
३.	आग्नेय	जूना	७.	वैश्यक	रायमल्ल
४.	वच्छल	माणिक	८.	माढर	अनु

इस प्रकार भीनमाल के कुल ७० करोड़पति ब्राह्मण सेठों ने अपने राजा का अनुसरण कर जैनधर्म अंगीकार किया। उस काल में इस नगर की प्रजा बहुत ही सुखसमृद्धि संपन्न थी एवं राजा भी बड़ा पराक्रमी, धर्मपरायण एवं न्यायी था। यह क्रम ३१६ वर्ष तक चलता रहा। वि. सं. ११११ में बोड़ी मुगल एक मुसलमान राजा ने लूटपाट करने के उद्देश्य से भीनमाल पर चढ़ाई की तथा खूब धन लूट कर वह अपने देश ले गया। मुगल राजा के अत्याचार से भयभीत होकर अनेकों लोग नगर छोड़ कर भाग गये। अधिकांश लोग पड़ौसी राज्य गुजरात में जा बसे। कहते हैं कि वल्लभी से सभ्यता एवं सम्पन्नता भीनमाल में आई और भीनमाल से वह गुजरात में जा टिकी। सामाजिक रीतिरिवाज, रहन-सहन का ढंग आज भी भीनमाल व गुजरात का करीब-करीब समान पाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीनमाल से पारायण कर गौतमगौत्रीय सेठ विजयका वंशज सहदे वि. सं. ११११ में चाम्पानेर के पास भालेज नामक नगर में जाकर बस गये। वहां जाकर उसने किराणा का व्यापार किया जिस पर उसकी भंसाली उपगोत्र कायम हुई। सहदे भंसाली के दो पुत्र हुए। एक का नाम यशोधन और दूसरे का नाम सोमा था। यशोधन बड़ा ही प्रतापी पुरुष था। एक बार वह दाहज्वर से बहुत पीड़ित हुआ। अनेकों उपाय किये लेकिन उसकी पीड़ा शान्त नहीं हुई। विवश हो यशोधन की माता ने अपनी गोत्रजा देवी की आराधना की। तब उसकी अम्बिका नामक गोत्रजा देवी ने प्रकट होकर कहा कि तुम्हारे कुटुम्ब ने शुद्ध समकित जैन धर्म को त्याग कर मिथ्यात्व स्वीकारा है इसलिये मैंने तुम्हारे पुत्र यशोधन को दाहज्वर से पीड़ित किया है। इस पर यशोधन की माता ने अपनी गोत्रजा देवी से क्षमाप्रार्थना की एवं भविष्य में ऐसी त्रुटि न करने का वचन दिया। तब अम्बिका देवी ने उसे कहा कि तुम्हारे नगर में शुद्ध चारित्र की पालना करने वाले, विधियुक्त जैन धर्म की प्ररूपणा करने वाले श्री विजयचन्द्रजी उपाध्याय पधारे हैं उनके चरण धोकर उस जल से यशोधन का शरीर सिंचन करने पर ज्वर की पीड़ा शान्त हो जायगी। यशोधन की माता ने अपनी गोत्रजा देवी के आदेशानुसार उपाय किया जिससे यशोधन को ज्वर की पीड़ा से मुक्ति मिली। स्वस्थ होने पर यशोधन को उसकी माता ने उसकी गोत्रजा देवी द्वारा बताया हुआ सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया जिससे यशोधन भी बहुत प्रभावित हुआ। वह उपाध्यायजी महाराज के चरणों में जा गिरा। गुरु महाराज ने उसको प्रतिबोध देकर शुद्ध समकित का रागी बनाया। यशोधन ने गुरु महाराज के मुख से बारह व्रत स्वीकार किये। यशोधन ने विनति कर श्री विजयचन्द उपाध्यायके गुरु श्री जयसिंहसूरि आचार्य को अपने नगर में बुलाये। उसने आचार्यजी का सुन्दर प्रवेश महोत्सव किया। वि. सं. ११६९ वैशाख सुद ३ को आचार्यश्री जयसिंहसूरि ने विजयचन्द उपाध्यायजी को आचार्यपद प्रदान किया। और उनका नाम आर्यरक्षित रक्खा। श्री आर्यरक्षित सूरि के आचार्य पदासीन होने के उत्सव में श्री यशोधन भंसाली ने काफी धन खर्च किया एवं महोत्सव किया। श्री आर्यरक्षितसूरि के उपदेश से श्री यशोधन भंसाली ने भालेज एवं अन्य सात नगरों में सात जिनमन्दिर बनाये। श्री शत्रुंजयतीर्थ की महान् संघयात्रा की। श्री यशोधर भंसाली के यशोगान की एक हस्तलिखित पुस्तक में कविता मिलती है जो निम्न प्रकार से है :

भलु नगर भालेज वसे भंसाली भुजबल।
तास पुत्र जयवन्त जसोधन नामे निर्मल॥

पावे परवत जत्र काज आविया गहगही।
नमी देवी अम्बाई आवी रहीया तलहटी॥

आविया सुगुरु एहवे समे आर्यरक्षित सूरिवर।
धन-धन यशोधन पय नमी चरण नमे चारित्रधर॥

धरी भाव मन शुद्ध बुद्धि पद प्रणमे सहि गुरु।
आज सफल मुझ दिवस पुण्ये पामिया कल्पतरु॥

जन्म मरणभय-भीति सावयवय साखे।
समकितमूल सुसाधु देवगुरु धर्मह आये॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिहरी पाय शुभ आचरे धरे ध्यान धर्मनुं महोता ।
ए श्रीमाली धुरसखा धन-धन जशोधन ए सखा ।।

भीनमाल नगरमें लींबा नामक सेठ रहता था जिनके बीजलदे नामक पत्नी थी । वि. सं. १३३१ की साल में उस लींबा सेठ के घर एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया जिसका नाम धर्मचन्द्र रक्खा गया । लींबा अपने परिवार सहित जालोर में व्यापार करने गया था और वहां पर जाकर बस गया था । एक समय श्री देवेन्द्रसूरिजी महाराज का जालोर में पदार्पण हुआ । धार्मिक प्रवृत्ति के श्रावक होने के नाते लींबा का सम्पर्क आचार्यजी से हुआ । श्री देवेन्द्रसूरिजी की वैराग्यमय वाणी से लींबा का पुत्र धर्मचन्द प्रभावित हुआ और उसने चारित्र अंगीकार करने की इच्छा व्यक्त की । अपने मातापिता की आज्ञा प्राप्त कर वि. सं. १३४१ में धर्मचन्द ने आचार्य महाराज से दीक्षा प्राप्त की । उनका नाम श्री धर्मप्रभमुनि रक्खा गया । वि. सं. १३५९ में मुनि धर्मप्रभ को आचार्यपद प्राप्त हुआ एवं वि. सं. १३७१ में आपने गच्छेशपद प्राप्त किया । आचार्यश्री धर्मप्रभसूरि ने वि. सं. १३८९ में ५७ प्राकृत गाथाओं कालकाचार्य कथा की रचना की । इस ग्रन्थ के मंगलाचरण में निम्न श्लोक लिखा गया है—

नयरम्मि धरावासे आसी सिरिवयरसिंहरायस्स ।
पुत्तो कालयकुमरो देवीसुरसुन्दरीजाओ ।।

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपने नाम का और काल का वर्णन किया है जो इस प्रकार है—इति श्रीकालकाचार्य-कथा संक्षेपतः कृता । अंकाष्टयक्षः १३८९ वर्षे ऐं श्री धर्मप्रभसूरिभि॰ ।। इति श्रीकालकाचार्य कथा ।। छ ।। श्री ।। ॐ नमः ।। : ।। एक ही ग्रन्थ की रचना करके विश्वख्याति अर्जित करने वाले ग्रन्थकार बहुत ही कम मिलेंगे । आचार्य धर्मप्रभसूरि उन विरल ग्रन्थकारों में से एक हैं । जिनकी कृति कालकाचार्यकथा विश्वप्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ की पश्चिमी राष्ट्रों के विद्वानों ने खूब प्रशंसा की है । बर्लिन के प्रो. ई. लायमेनने Zeitsch Deutsch Morgenlandischen तथा W. Norman Brown ने वाशिंग्टन में The Story of Kalaka के नाम इस ग्रन्थ का प्रकाशन कराया है । प्राचीन जैन ग्रन्थकारों ने भी धर्मप्रभसूरि कृत कालकाचार्य कथा का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है । जैसे विचाररत्नसंग्रह में श्री जयसोमसूरि ने एवं श्री समयसुन्दरजी ने समाचारी शतक में उक्त कालकाचार्यकथा का प्रसंग दिया है । आज भी India Office Library में इस कथा की प्रति विद्यमान है ।

आंचलगच्छीय आचार्य श्री भावसागरसूरि का जन्मस्थान भी भीनमाल था । आपका जन्म वि. सं. १५१० में माघमास में हुआ था । उनके पिता का नाम श्री सांगराज एवं माता का नाम श्रीमती शृंगार देवी था । इनका जन्म का नाम भावड था । आचार्य धर्ममूर्तिसूरि की पटावली में आचार्य भावसागरसूरि का जन्मस्थान नरसाणी (नरसाण) बताया गया है । श्रीभावसागरसूरि की दीक्षा वि. सं. १५२० में हुई थी । इन के गुरु का नाम श्री जयकेसरसूरि था । भावसागरसूरि ने अनेकों शास्त्रों का अध्ययन किया एवं वे आगमों के पारंगत विद्वान् बने । आपको श्री गोड़ी पार्श्वनाथ प्रभु का इष्ट था । श्री भावसागरसूरि के हाथ से अनेकों प्रतिष्ठायें हुई हैं ।

इतिहास के अगाध सागर में और भी कितने मोती होंगे जो इस धराने उत्पन्न किये हैं । इस विषय में कोई जितनी गहराई से ढूंढने का प्रयत्न करेगा उसे उतनी ही अपार रत्नराशि प्राप्त होगी । क्योंकि अनेकों ग्रन्थों में अनेकों प्रसंगों पर इस नगर का नामोल्लेख हुआ है । आज भी यह नगर जिले का प्रमुख व्यावसायिक स्थल है । प्राचीन अवशेषों के रूप में यहां मन्दिर, तालाब, बाव अथवा कुए आज भी विद्यमान हैं । रेलवे स्टेशन से गांव की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरफ आते हुए स्टेशन से लगभग एक किलोमीटर चलने पर प्राचीन काल में पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी के सती होने की स्मृति रूप में देहरियां भग्नावशेष के रूप में खड़ी पाई जाती हैं। आगे रानीवाड़ा रोड पर चण्डीनाथ का मन्दिर एवं वाव है। यह भी बहुत पुराना मन्दिर है। इसी मन्दिर के पास में एक ऊंचा टीबा है। यहां पर जगतस्वामी सूर्य का मन्दिर वि. सं. २२२ में बना था। उस मन्दिर के अवशेष इस टीबे की खुदाई करने से मिलते हैं। अभी हाल ही दो वर्ष पूर्व इस टीबे को समतल करते समय जमीन में से संगमरमर के पत्थर का बना हुआ थम्भे के ऊपर का टोडा मिला है जो नगरपालिका उद्यान में विद्यमान है। इसी मन्दिर के थम्भे का एक भाग आम बाजार में गणेश चौक में पड़ा है। नगर के मध्य में वाराह श्याम का मन्दिर है जो भी बड़ा प्राचीन नजर आता है। नगर के उत्तर पश्चिम में विशाल जाखौडा तालाब है। तालाब के उत्तर की तरफ पाल पर दादेली वाव है। नगर के उत्तर में नरता गांव की तरफ जाने वाले गोलवी तालाब है जो किसी जमाने का गौतमसागर तालाब है। गोलाणी तालाब के पाल पर कुछ देहरियां बनी हुई हैं जो कुछ जैन मुनियों की हैं। पश्चिम की तरफ करीब दो मील की दूरी पर पहाड़ी है जिसका नाम खीमजा डूंगरी है। पहाड़ी पर एक मन्दिर है जो खीमजा माता का मन्दिर है। खीमजा माता (देवी) के बारे में पूर्व में लिखा जा चुका है। पहाड़ी की तलहटी में बालासमन्ध तालाब है। इस तालाब के बारे में एक दन्तकथा प्रचलित है कि गौतम ऋषि ने किसी कारणवश इस तालाब को श्राप दिया था। उसके बाद इस तालाब में पानी नहीं रहता अन्यथा उसके पूर्व यह तालाब एक झील के समान भरा रहता था। नगर में आज सात जैन मन्दिर हैं। जिनमें से चार तो शहर में हैं। एक स्टेशन क्षेत्र में तथा दो नगर के बाहर। हाथियों की पोल में प्रभु पारसनाथजी का एवं महावीरस्वामी का ऐसे दो मन्दिर हैं। ये दोनों जिनप्रतिमाएं सर्वधातु की बनी हुई हैं और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी की प्रतिष्ठित हैं। शहर के मध्य में गणेश चौक में प्रभु शान्तिनाथजी का देरासर है। यह मन्दिर किसी यति द्वारा मन्त्रों से भीनमाल में उतारा गया है ऐसी दन्तकथा प्रचलित है। नगर की कुल जनसंख्या लगभग २५००० है जिनमें ८०० घर जैन हैं। जैनों के दो सम्प्रदाय हैं तपागच्छ त्रैस्तुतिक समाज एवं अंचलगच्छ। तपागच्छ के घर करीब ६५० हैं एवं अंचलगच्छ के घर १५० हैं। समाज का वातावरण सौहार्दपूर्ण है। सभी लोग आपस में रिश्तेदारी से जुड़े हुए हैं। समाज की व्यवस्था पुरानी पंचायती व्यवस्था के अनुसार है।

परिशिष्ट–१

भीनमाल के श्रावक के द्वारा श्रुतभक्ति

इस लेख के अनुसंधान में यह बताते हुए आनंद हो रहा है कि भीनमाल के रत्न गच्छनायक पू. भावसागरसूरि के सदुपदेश से भीनमाल के श्री लोल श्रावक ने सं. १५६३ में श्रीकल्पसूत्र सचित्र लिखवाया था।

बहुत सौभाग्य और आनंद की बात है कि जयपुर की प्राकृत भारती संस्था ने इस कल्प सूत्र की प्राचीन चित्र और डिजाइन सहित आवृत्ति निकाली है। इसका सम्पादन महोपाध्याय विनयसागरजी ने किया है। चित्र के ब्लॉक प्राचीन चित्रों के बनाये हैं। इस आवृत्ति का प्रकाशन करके संस्था ने जैन साहित्य का बड़ा उपकार किया है। ग्रन्थ की प्रशस्ति में भीनमाल के श्रावक एवं अंचलगच्छ का उल्लेख होने से इसे यहां दिया जा रहा है :

स्वस्ति-प्रद-श्री-विधिपक्षमुख्या-धीशा समस्तागमतत्त्वदक्षाः।
श्रीभावतः सागरसूरिराजा, जयन्ति संतोषितसत्समाजाः ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीरत्नमालं किल पुष्पमालं, श्रीमालमाहुश्च ततो विशालम् ।
जीयाद् युगे नाम पृथग् दधानं, श्रीभिन्नमालं नगरं प्रधानम् ॥ २ ॥

ओएसवंशे सुखसन्निवासे आभाभिधः साधुसमो बभासे ।
भाति स्म तज्ज्ञो भुवि सादराजस्तदंगजः श्रीघुडसी रराज ॥ ३ ॥

तस्यास्ति वाछूदयिता प्रशस्ता, कोऽलं गुणान् वर्णयितुं न यस्याः ।
याऽजीजनत् पुत्रमणिं प्रधानम्, लोलाभिधानं सुरगोसमानम् ॥ ४ ॥

जायाद्वयी तस्य गुणौघखानी, चंद्राउलीश्चान्यतमाऽथ जानी ।
विश्वंभरायां विलसच्चरित्राः सुता अमी पंच तयोः पवित्राः ॥ ५ ॥

वज्रांगदूदाभिध-हेमराज-श्चाम्पाभिधानोऽप्यथ नेमराजः ।
सुता च झांझूरपरा च साम्पूस्तथा तृतीया प्रतिभाति पातूः ॥ ६ ॥

इत्यादि निःशेषपरिच्छदेन, परिवृतेन प्रणतोत्तमेन ।
शुद्धक्रियापालन पेशलेन, श्रीलोलसुश्रावकनायकेन ॥ ७ ॥

सुवर्णदण्डप्रविराजमाना, विचित्ररूपावलिनिःसमाना ।
श्री कल्पसूत्रस्य च पुस्तिकेयं कृशानुषट्पंच धरामितेऽब्दे (१५६३) ॥ ८ ॥

संलेखिता श्रीयुतवाचकेन्द्र—श्रीभानुमेर्वाह्वयसंयतानाम् ।
विवेकतः शेखरनामधेय—सद्वाचकानामुपकारिता च ॥ ९ ॥

न जातु जाड्यादिधरा भवंति, न ते जना दुर्गतिमाप्नुवन्ति ।
वैराग्यरंगं प्रथयत्यमोघं, ये लेखयन्तीह जिनागमौघम् ॥ १० ॥

श्रीजिनशासनं जीयाद् जीयाच्च श्रीजिनागमः ।
तल्लेखकश्च जीयासु-र्जीयासुर्भुवि वाचकाः ॥

अर्थात् पूर्वसमय में जो रत्नमाल, पुष्पमाल और श्रीमाल नगर के भिन्न भिन्न नाम से विख्यात था और जो आज भिन्नमाल के नामसे प्रसिद्ध है, उस नगरी में ओसवाल वंश के आभा नामक श्रावक रहते थे। आभा का पुत्र सादराज था और सादराज का पुत्र घुडसी था। घुडसी की धर्मपत्नी का नाम वाछू था। घुडसी के पुत्र का नाम लोला था। लोला की दो पत्नियां थीं—चंदाउलि और जानी। लोला श्रावक के वज्रांग, दूदा, हेमराज, चम्पा और नेमराज नाम के पांच पुत्र थे तथा झांझू, सांपू और पातू नामक तीन पुत्रियां थीं।

विधिपक्ष (अंचलगच्छ) के गणनायक श्री भावसागरसूरि के धर्मसाम्राज्य में वाच केन्द्र (उपाध्याय) श्री भानुमेरु के उपदेश से तथा वाचक विवेकशेखर के उपयोग के लिये इस लोला श्रावक ने समस्त परिवार के साथ वि. सं. १५६३ में चित्रसंयुक्त इस पुस्तक को सुवर्णवर्णाक्षरों में लिखवाया।

भीनमाल में लिखी हुई यह हस्तप्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से मिली है। उसका क्रमांक ५३५४ है। पत्र संख्या १३६ है। माप २८.५ × ११.३ सेन्टिमीटर है। मूलपाठ की पंक्ति ७ और अक्षर २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अवचूरि सहित है। पत्र के चारों और संस्कृत भाषा में अवचूरि लिखी हुई है। पत्र के एक तरफ मध्य में आकृति दे रखी है और पत्र में दूसरी तरफ तीन डिजाइनें दे रखी हैं। जो आसमानी और लाल स्याही से तथा आकृति का मध्य स्वर्ण स्याही से अंकित है। बोर्डर में दो दो लाल स्याही की लकीरों के मध्य में स्वर्ण स्याही की लाइन दी है। इस प्रति में पश्चिमी भारत की जैन चित्र शैली, मुख्यत: राजस्थानी जैन कला के कुल ३६ चित्र हैं जो कि स्वर्ण प्रधान पांच रंगों में है।

परिशिष्ठ२

भीनमाल में अचलगच्छ का प्रभाव

अंचलगच्छ के प्रथम आचार्य श्री आर्यरक्षितसूरि एवं आपके पट्टधर श्री जयसिंहसूरि ने भीनमाल में पदार्पण किया था। अचलगच्छ के नायक पट्टधरों में श्री धर्मप्रभसूरि एवं श्री भावसागरसूरि का जन्म भीनमाल में हुआ था। अंचलगच्छके महाप्रभावक पू. आचार्य श्री कल्याणसागरसूरिने भी भीनमालको पावन किया था। भीनमालमें आपके शिष्यका चातुर्मास हुआ था। प्रायः महोपाध्याय देवसागरजीका चातुर्मास हुआ था। तब आप खंभात (गुजरात) में चातुर्मासस्थित थे। भीनभालसे देवसागरजी ने आपको संस्कृत पद्य-गद्य में ऐतिहासिक पत्र लिखा था—जिसमें भीनमाल एवं खंभातमें अंचलगच्छ के साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओंका एवं धर्माराधना—पर्वाराधनाके वर्णन प्राप्त है। श्री कल्याणसागरसूरि जब भीनमाल पधारे थे तब आपने गोडीपार्श्वनाथका स्त्रोत रचा था। स्तोत्र के आदि एवं अंतिम श्लोकों का यहां उल्लेख कर रहे हैं :

वामेयं मरुदेशभूषणतरं श्रीपार्श्वयक्षार्चितम् ।
कल्याणावलि वल्लीसिंचनघनं श्रीक्ष्वाकुवंशोद्भवम् ।।
आराद् राष्ट्र समागतैःनरवरैः संसेवितं नित्यशः ।
श्रीमच्छ्रीकर–गौडिकाभिधधरं पार्श्वं सुपार्श्वं भजे ।।

वामादेवीके नंदन, मरुदेशके उत्तम भूषण, पार्श्वयक्षके द्वारा पूजित, कल्याणकी परम्पराकी लताको सिंचन करनेवाले मेघ, उत्तम इक्ष्वाकुवंशके राजा अश्वसेनके पुत्र, नजदीकके राष्ट्रोंके राजाओं द्वारा हमेशा पूजित, ज्ञानलक्ष्मी वाले, और लक्ष्मी देनेवाले, गौडिक नाम धारण करनेवाले उत्तम पार्श्ववाले पार्श्वनाथ स्वामीका मैं शरण लेता हूं।

भिन्नमाले सदा श्रेष्ठे गुणवच्छ्ब्दभूषिते ।
पुष्पमालेतराभिख्येऽनेकवीहारसंयुते ।।
श्रीमतः पार्श्वनाथस्य स्तवनं जगतोऽवनम् ।
कल्याणसागराधीशैः सूरिभी रचितं मुदा ।।

जो नगर गुणवाले शब्दोंसे अलंकृत है, पुष्पमाल जिसका अपर नाम है और जो अनेक जिन मन्दिरोंसे समृद्ध है ऐसे सदैव श्रेष्ठ भिन्नमाल नगरमें, अचलगच्छके स्वामी आचार्य महाराज श्री कल्याणसागरसूरिने जगतके जीवोंका रक्षण करनेवाला तीर्थंकर पार्श्वनाथस्वामीका यह स्तवन आनंदपूर्वक रचा है।

❀ ❀ ❀

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org